Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XV, Issue No. 5, July-2018, ISSN 2230-7540

महात्मा गाँधी का समाज–दर्शन

Dr. Vandana Sharma*

Assistant Professor in History, Government Post Graduate College, Fatehabad, Agra

***सारांश** – बहुत से लोग गाँधी को दार्शनिक नहीं मानते हैं और न यह सोच ही सकते हैं कि उनका भी कोई जीवन-दर्शन था। वस्तुतः दर्शन का अर्थ ही सत्य को देखना है। ''दृश्यते अनेन इति दर्शनम्'' अर्थात् जिसके माध्यम से सत्य को सही प्रकार से देखा जाय वही दर्शन है। जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बंधित ऐसा कोई प्रश्न नहीं जिस पर गाँधी ने सूक्ष्म से सूक्ष्म दृष्टि न डाली हो।*

गाँधी का सामाजिक दर्शन के क्षेत्र में वर्ण-व्यवस्था का समर्थन एक मौलिक योगदान है। गाँधी ने कहा है कि "कार्य के आधार पर, चाहे वह ब्राहमण ही क्यों न हो श्रेष्ठता का दावा करना अनुचित और अन्यायपूर्ण है। वर्णाश्रम व्यवस्था का अर्थ है-शक्ति का रक्षण और उसका व्यवस्थित उपयोग।" वस्तुतः सर्वोदय अर्थात् सबका उदय ये संकल्पना ही गाँधी के समाज-दर्शन का सार तत्व है।

***बीज शब्द** – समाज-दर्शन, वर्ण-व्यवस्था, सर्वोदय।*

---------------------------------x---------------------------------

प्रस्तावना

जीवन-दर्शन शुद्ध चिन्तन की वस्तु नहीं है, उस चिन्तन के पीछे न केवल विभिन्न विचारधाराओं का प्रभाव रहता है, बल्कि अनेक महापुरूषों के विचारों एवं उनके कार्यकलापों का प्रभाव रहता है। यही नहीं, इतिहास की घटनाओं का क्रम, साम्राज्यों एवं संस्कृतियों के उत्थान-पतन की प्रतिक्रियाएँ, ज्ञान-विज्ञान के बढ़ते हुए चरण, भौतिक, सामाजिक और पारिवारिक परिवेश - ये सब मिलकर किसी व्यक्ति के दर्शन को एक दिशा देते है और दिशा भी न केवल उस व्यक्ति के जीवन में अनुभूतियों और परिस्थितयों के अनुसार संशोधित, परिवर्तित होती रहती है, बल्कि कालान्तर में उनके शिष्यों और अनुयायियों द्वारा उसमें परिवर्तन होता रहता है। गाँधी परम सत्य की खोज में जीवन भर प्रयोग करते रहे, संघर्ष करते रहे और उन्होने कभी अपनी भूल को मानना अस्वीकार नहीं किया और न वे अपने विचारों को रूढ़िगत बनाना चाहते थे।

विषय प्रवेश-

बहुत से लोग गाँधी को दार्शनिक नहीं मानते हैं और न यह सोच ही सकते हैं कि उनका भी कोई जीवन-दर्शन था। वस्तुतः दर्शन का अर्थ ही सत्य को देखना है। ''दृश्यते अनेन इति दर्शनम्'' अर्थात् जिसके माध्यम से सत्य को सही प्रकार से देखा जाय वही दर्शन है। गाँधी की खोज भी सत्य की खोज थी और वह ऐसी सत्य की खोज थी जिसमें उन्हें अपने प्राणों का बलिदान तक करना पड़ा। ऐसे उदाहरण इतिहास में कम मिलेंगे जिनमें प्राणों की बलि देकर अपने चिन्तन के सत्य को समझा और समझाया गया हो। सुकरात और ईसा ऐसे ही ज्वलन्त उदाहरण हैं। इसलिए यह कहना कि गाँधी दार्शनिक नहीं थे, उनका तत्वदर्शन नहीं था, लोगों की अज्ञानता का परिचायक है। गाँधी के जीवन दर्शन में एक पक्ष चिन्तन और अनुभूति का है, दूसरा पक्ष नैतिक आचरण का है और तीसरा पक्ष निरन्तर संघर्ष करते रहने का है। उनके दर्शन की व्यापकता ही उनके चिन्तन की विशेषता है। जीवन का, विशेष रूप से सामाजिक, आर्थिक और नैतिक सन्दर्भ में, कोई प्रश्न ऐसा नहीं है जिस पर गाँधी ने सूक्ष्म से सूक्ष्म दृष्टि न डाली हो।

गाँधी का जीवन-दर्शन केवल ईश्वर और उसकी सृष्टि से सम्बन्धित चिन्तन पर आधारित नहीं था, जैसा कि हम भारतीय दर्शन की अथवा पाश्चात्य दर्शन की उच्चतम चिन्तन धाराओं में देखते है, किन्तु ऐसे उदाहरण कम मिलते हैं जिसमें दार्शनिकों ने एक व्यापक सामाजिक दर्शन दिया हो। सुकरात, ईसा और बुद्ध तथा आधुनिक युग के कार्ल मार्क्स और लेनिन के नाम इस श्रेणी में आते हैं। गाँधी भी इसी श्रेणी में हैं, क्योंकि उन्होने न केवल एक सामाजिक दर्शन दिया, बल्कि उसके अनुरूप सामाजिक क्रान्ति के लिए आत्माहुति भी दी। अतः उस पर विवेचन आवश्यक है। गाँधी का सामाजिक दर्शन के क्षेत्र में वर्ण-व्यवस्था का समर्थन एक मौलिक योगदान है। वे लिखते है:-

www.ignited.in

"मेरे विचार से, वर्णाश्रम प्रकृति की एक सहज विशेषता है। मैं मानता हूँ कि किसी का अपने आपको ऊँचा मानने और किसी दूसरे को नीचा मानने की धृष्टता करना हिन्दुत्व की सहज प्रकृति के विरूद्ध है। सभी का जन्म ईश्वर की सृष्टि की सेवा के लिए हुआ है। ब्राह्मण को यह सेवा अपने ज्ञान से करनी है, क्षत्रिय को अपने संरक्षण की शक्ति से, वैश्य को अपनी व्यापारिक क्षमता से और शूद्र को शारीरिक श्रम से।"

गाँधी ने कहा है कि "कार्य के आधार पर, चाहे वह ब्राह्मण ही क्यों न हो श्रेष्ठता का दावा करना अनुचित और अन्यायपूर्ण है। वर्णाश्रम व्यवस्था का अर्थ है- शक्ति का रक्षण और उसका व्यवस्थित उपयोग।" इस तर्क से इन्कार नहीं किया जा सकता।

एक बात जो खटकती है वह है गाँधी का आनुवांशिकता पर बल देना। इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई व्यक्ति जो ब्राह्मण है, यदि उसमें ब्राह्मण के गुण न हो तो वह ब्राह्मण बना रहेगा।

गाँधी के विचार से एक शूद्र ब्राह्मण हो सकता है और ब्राह्मण शूद्र हो सकता है। किन्तु इसके कारण किसी के प्रति श्रेष्ठता या हीनता का भान नहीं आना चाहिए, क्योंकि श्रम पर आधारित सेवा का मूल्य ज्ञान पर आधारित सेवा से कम नहीं हैं और यदि कोई अपने गुण-कर्म-स्वभाव के विपरीत किसी वर्ण में रहने का प्रयास करेगा तो प्रकृति स्वयं उसका समाधान करेगी। आनुवंशिकता कार्य की क्षमता की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। उदाहरण के लिए, एक कलाकार का पुत्र कला के मर्म और सूक्ष्मतम रहस्यों को जानने और उसमें नवीनता का सृजन करने में अधिक समर्थ हो सकता है। व्यवहार में ऐसा होता भी है किन्तु कुछ कार्यों को हेय दृष्टि से देखने के कारण वे लोग जिन्हे हम निम्न वर्ग का मानते है अपने व्यवसाय में नहीं रहना चाहते। पर गाँधी ने गीता में प्रतिपादित सिद्धान्त के अनुसार सभी कार्यों को समभाव की दृष्टि से देखा। एक स्थान पर उन्होने लिखा है:-

"हर माँ अपने बच्चों के लिए भंगी होती है और आधुनिक चिकित्साशास्त्र का हर विद्यार्थी इस माने में चमार है कि उसे मानव अवयवों की चीड़-फाड़ करनी और चमड़ी हटानी पड़ती है। परन्तु उनके धन्धों को हम पवित्र मानते हंै। मेरा कहना है कि आम भंगियों और चमारों के धन्धे माताओं और डॉक्टरों के धन्धों से कम पवित्र और उपयोगी नहीं हैं।"

परन्तु लुई फिशर ने गाँधी के वर्ण सम्बन्धी विचारों में परम्पर विसंगति देखी है जो विभिन्न वर्णों के पारस्परिक खान-पान और शादी- विवाह से सम्बन्धित हैं। जबकि वास्तव में लुई फिशर ने गाँधी के वक्तव्य को पूरे सन्दर्भ में नहीं समझा। 1932 में भी उन्होंने खान-पान और अन्तर्जातीय विवाह के सम्बन्ध में यह पुनः दोहराया कि अस्पृश्यता, जिस रूप में हम सब उसे जानते हैं, एक जहरीला कीड़ा हैं, जो हिन्दू धर्म की जड़ों को खा रहा हैं। भोजन और विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध हिन्दू समाज के विकास में बाधक है। मेरे ख्याल से यह भेद मौलिक हैं। इस तूफानी आन्दोलन में मुख्य सवाल पर हद से ज्यादा बोझ डालकर उसे जोखिम में डालना समझदारी नहीं होगी।

वस्तुतः सर्वोदय की संकल्पना गाँधी के समाज-दर्शन का सार तत्व है। जोहन्सवर्ग से डरबन तक की रेल-यात्रा में उनको पोलक ने रस्किन की पुस्तक "अन् टू द लास्ट" पढ़ने के लिऐ दी, जिसे वे चैबीस घंटे की यात्रा में पढ़ गए तथा जिसके आधार पर 1908 में उन्होने "सर्वोदय" शीर्षक से छोटी-सी पुस्तक की रचना की।

गाँधी ने सर्वोदय की प्रस्तावना में यह भी स्पष्ट किया है कि उनकी सर्वोदय पुस्तिका "अन् टू द लास्ट" का अनुवाद नहीं है। उन्होने लिखा है- "इस पुस्तिका के नाम का शब्दानुवाद भी हमने नहीं किया, क्योंकि जिसने अंग्रेजी में बाइबिल पढ़ा हो, वही उसे समझ सकता है। परन्तु पुस्तक लिखने का हेतु सबका कल्याण-सबका उदय, होने के कारण इस लेखमाला का नाम सर्वोदय रखा है।"

सर्वोदय की संकल्पना गाँधी के अध्यात्मिक शिष्य विनोबा ने बहुत अच्छे ढ़ग से की है। वे कहते हैंः-

"आज अप्पा साहब मुझसे कह रहे थे कि इसे 'सर्वोदय', के बदले 'अन्त्योदय' कहें तो अच्छा है क्योंकि हमारे भंगी भाई सबसे आखिर के दर्जे के हैं।" वास्तव में "सर्वोदय" शब्द का मूल अन्त्योदय की कल्पना में ही है।"

सर्वोदय में सबसे नीची श्रेणी वालों, अन्त्यों का भी उदय है। सारी दुनिया का उदय जब होगा तब होगा, लेकिन भंगी का उदय तो होना ही चाहिए। शब्द तो मैं "सर्वोदय" रखना ही पसंद करूगा, क्योंकि सर्वोदय में अन्त्योदय आ जाता है। केवल "अन्त्योदय" शब्द में भाव यह आता है कि बाकी के लोगों का उदय हो चुका है, लेकिन ऐसा नहीं है। इस अभागी दुनिया में उदय किसी का भी नहीं हुआ, अभी सभी का अस्त ही है। ....समाज के धनवानों का तो कब का अस्त हो चुका और जो दरिद्र हैं, उनका तो अस्त ही है। ....धनवानों की बुद्धि जड़ धन की संगति से जड़ और निस्तेज बन जाती है। सारांश, जड़ बने हुऐ लोगों और भूखों, दोनो का उदय होना बाकी है, इसलिए शब्द तो सर्वोदय ही रहे, लेकिन फिक्र अन्त्योदय की भी रखें।

गाँधी ने जिस समाज और व्यक्ति की, संकल्पना की वह भारतीय दर्शन की पृष्ठभूमि और सन्दर्भ में की गयी है। वे समाज को टुकड़ों में बंटा हुआ नही मानतें थे। उनके लिये

समस्त मानव ही समाज था और व्यक्ति उस मानवता का ही एक रूप था। इसी सिद्धान्त पर "आत्मवत् सर्वभूतेषु" का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया अर्थात् अपनी ही तरह दूसरों को भी समझो। गांधी इन वक्तव्यों मे समाज और व्यक्ति के सम्बन्धों के सन्दर्भ मे अपना स्पष्ट चिन्तन प्रस्तुत करते हैं। "हरिजन" (28.07.1946) में गांधी ने सर्वोदय का जो मॉडल प्रस्तुत किया, वह इस प्रकार है:-

"जीवन एक पिरामिड नहीं होगा जिसमे शीर्ष अधस्तल के ऊपर निर्भर करता है। प्रत्युत जीवन एक सामुद्रिक वृत्त होगा जिसका केन्द्र व्यक्ति होगा, जो गाँव के लिए समर्पित होगा और गाँव का अस्तित्व कई गाँवों के वृत्त के लिए होगा और इस प्रकार सम्पूर्ण जीवन एक समग्र जीवन होगा जो ऐसे व्यक्तियों से बनेगा जो अहंकार से उदण्ड न होंगे, बल्कि विनयशील होंगे और बड़े सामुद्रिक वृत्त के भागी होंगे जिसके वे स्वयं अभिन्न अंश होंगे।"

यहाँ पर गांधी ने पिरामिड की ऊँचाई और निचाई का भेद मिटा दिया है और सामुद्रिक वृत्त की कल्पना देकर समानता पर आधारित समाज की कल्पना दी है जिसमें व्यक्ति और पूरी मानवता एक धरातल पर एकरूप हो। "गाँधी टुडे" मे जयदेव सेठी का यह कथन सही नहीं है कि गाँधी ने भावी समाज को कोई मॉडल प्रस्तुत नहीं किया। अन्ततोगत्वा गाँधी ने सर्वोदय की संकल्पना अपनी मृत्यु के 3 दिन पहले इस व्यक्तव्य में प्रस्तुत की-

"कांग्रेस को अब भी आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है। इन स्वतन्त्रताओं को प्राप्त करना राजनैतिक स्वतन्त्रताओं से अधिक कठिन है, क्योंकि वे रचनात्मक है और कम उद्देश्य वाली और चमत्कारहीन है"।

गाँधी एक अन्य स्थान पर कहते है:-

"मैं ऐसी स्थिति लाना चाहता हूँ जिसमें सबका सामाजिक दर्जा समान माना जाय। मजदूरी करने वाले वर्गों को सैकड़ों वर्षों से सभ्य समाज से अलग रखा गया है और उन्हे नीचा दर्जा दिया गया है। उन्हे शूद्र कहा गया है और इस शब्द का यह अर्थ किया गया है कि वे दूसरे वर्गों से नीचे हैं। मैं बुनकर, किसान और शिक्षक के लड़कों मे भेद नही होने दे सकता।"

निष्कर्ष

निष्कर्षतः गाँधी एक निष्ठावान हिन्दू थे और उन्हे इस पर गर्व भी था। अपने जीवन मे उन्होने धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं माना। वे सभी धर्मों एवं सम्प्रदायों के प्रति समान रूप से आदरभाव रखते थे। आज सामाजिक समस्या के सन्दर्भ में एक बहुत बड़ा प्रश्न उच्च वर्ग की जातियों और हरिजनों पर अत्याचार और उनके शोषण से जुड़ा है जबकि गाँधी ने अपना सारा जीवन हरिजनों के उत्थान हेतु ही समर्पित किया। उनके विचार से जो भी हिन्दू हरिजनों को हेय दृष्टि से देखता है, वह हिन्दू कहलाने के योग्य नहीं है। काम के आधार पर किसी को नीचा या ऊँचा समझा जाय, यह बात गाँधी को असहय थी। उनके सर्वोदय-दर्शन का यह प्रमुख सिद्वान्त था कि कर्मो को सम्मान दिया जाय। जबकि दूसरी ओर संकुचित धर्म के नाम पर कुछ स्वार्थी तत्व न केवल देश को दुर्बल बनाना चाहते हैं वरन् यदि सम्भव हो तो पुनः बँटवारा कराना चाहते हैं।

अतः आज सद्भावना का वातावरण उत्पन्न करने के लिए एक नही, वरन् अनेक गाँधी की आवश्यकता है जो प्रत्येक धर्म और सम्प्रदाय के लोगों को संकुचित अर्थ से अलग कर प्रेम के सूत्र में बांध सकें।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. कमला द्विवेदी, गाँधी के शिक्षा दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन, वाई0के0 पब्लिशर्स, आगरा, 1996, पृ॰-5-6।

2. डॉ. कमला द्विवेदी, शिक्षा दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन, पृ॰-26-27।

3. मो.क॰ गाँधी, सम्पूर्ण गाँधी वाङ्म्य, खण्ड-51, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, 1973, नई दिल्ली, पृ॰-366-67।

4. मो.क॰ गाँधी, सम्पूर्ण गाँधी वाङ्म्य, खण्ड-8, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, 1973, नई दिल्ली, पृ॰-233 ।

5. विनोबा भावे, सर्वोदय-विचार और स्वराज्य-शास्त्र, अ.भ॰ सर्वसेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, 1963, पृ॰-43-44।

6. मो.क॰ गाँधी, आत्मकथा, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1970, पृ॰-292।

7. जयदेव सेठी, गाँधी टुडे, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा॰ लिमिटेड, 1978, पृ॰-12।

8. मो.क॰ गाँधी, द कलेक्टेड वक्र्स ऑफ़ महात्मा गाँधी, वाल्यूम-90, पृ॰-497।

9. मो॰क॰ गाँधी, सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय खण्ड-8 पृ॰-39।

Corresponding Author

Dr. Vandana Sharma*

Assistant Professor in History, Government Post Graduate College, Fatehabad, Agra

sharma.vandana2020@gmail.com